ISSN 2230-7850 Impact Factor : 4.1625 (UIF) Volume - 6 | Issue - 5 | June - 2016

Indian Streams Research Journal

स्वतंत्रता आन्दोलन और समाजवादी चिन्तन पर विचार

डॉ.सरोज कुमार

इतिहास विभाग , जय प्रकाश विश्वविद्यालय छपरा सारण बिहार .

प्रस्तावना :

भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास में वामपंथी राजनीति के हस्तक्षेप का इतिहास काफी पुराना है। समाजवादी वैचारिकता के भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रवेश के इतिहास को 20वीं सदी के प्रथम दशक के अन्तिम वर्षो से खोजा जा सकता है जब 'यंग–भंग' आन्दोलन और तिलक की गिरफ्तारी और 6 साल की सजा दिए जाने के विरोध में आन्दोलनों के उठते ज्वार से अशक्त ब्रिटिश सरकार ने मौर्ले–मिन्टों सुधार को लाया और कांग्रेस पार्टी ने उसे स्वीकार कर लिया । इस समझौता के खिलाफ प्रतिक्रिया दो रूपों में सामने आई, 'बंगाल में क्रांतिकारी आन्दोलनों का गठन और दूसरा कुछ भारतीय क्रांतिकारियों का यूरोप, अमेरिका आदि देशों में जाकर ब्रिटिश विरोधी राष्ट्रों की मदद से हथियार और धन जमा कर भारत में क्रांतिकारी आन्दोलन को मदद करना। इसके अलावा भारत के अन्दर सिन्गारामेलू चोटिया, रामकृष्ण पिल्लई आदि जैसे वाम वैचारिकता के वाहक मार्क्स के विचारों को प्रचारित–प्रसारित करने के वौद्धिक कार्यो में लगे। यह प्रभाव उस विश्व पर्यघटन का प्रभाव था जो 1905 की रूसी क्रांति तथा एशियाई जापान की जारशाही रूस के खिलाफ युद्ध में विजय के कारण एशिया के गुलाम मुल्कों पर पड़ा था, मगर यह वामपंथी वैचारिकता का काल अपने शैशवावस्था में था, इसे सबसे ज्यादा बल 1917 की सफल रूसी क्रांति ने दिया, जिसने भारत के क्रातिकारियों, मजदूर आन्दोलनों और राष्ट्रीय आन्दोलन के एक तबके पर समाजवाद के प्रभाव को गहरा की बनया। कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल की तीसरी कांग्रेस में 'कालोनियल क्वेश्चन' पर बहस और खास कर भारत पर बहस के बाद जिस नीति को प्रसारित किया गया उसने मजदुर वर्ग को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ा और समाजवाद को एक राजनीतिक लक्ष्य के रूप में राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रवेश करा दिया।

असहयोग आन्दोलन में क्रांतिकारियों ने मदद की लेकिन असहयोग आन्दोलन की बिनाशर्त वापसी ने इन्हें मायूस किया और वे पुनः सक्रिय हो गए इसके बाद राष्ट्रीय आन्दोलन में आई सुस्ती और गिरावट का जो दौर चला वह साइमन कमीशन वहिष्कार आन्दोलन के समय ही समाप्त हो सका। इस बीच स्वराजपार्टी के कार्यक्रमों का ही वर्चस्व बना रहा। साइमन कमीशन वहिष्कार आन्दोलन को एक प्रभावकारी आन्दोलन का रूप देने में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस और वकर्स एण्ड पीजेन्टस पार्टी, जिसमें वामपंथियों का नेतृत्व था, अहम भूमिका का निर्वहन किया था। इस आन्दोलन के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन में आए उभार के दो पक्ष सामने आए। पहला पक्ष था सरकारी दमन का जो मार्च 1929 में मेरठ सड़यंत्र केस के रूप में सामने आया तब आन्दोलन का जबरदस्त लहर देश भर मे फैल गई। देश भर में हड़तालों का तांता सा चल पड़ा, बंगाल में चटगांव

स्थित सरकारी हथियार भंडार पर छापा मारा गया, पेशावर में आन्दोलन की तीव्रता ऐसी थी कि पेशावर शहर पर कई दिनों तक आन्दोलनकारियों का कब्जा रहा, जगह–जगह किसानों ने लगान देने से इन्कार कर दिया। सबसे महत्वपूर्ण घटना गढ़वाली सैनिकों का आन्दोलनकारियों पर गोली चलाने से इन्कार किए जाने की घटना थी। सरकारी दमन इस आन्दोलन को रोक नहीं सका। मगर आन्दोलन के इस उफान के बावजूद गांधी–इरविन समझौते ने एक बार पुनः चौरी–चौरी के बाद के इतिहास को ही दोहराया।

आन्दोलन वापसी के बाद की स्थितियांः–

1930 और 1932 में किया गया सदरनाफरमानी आन्दोलन किसी भी वांछित लक्ष्य को पुरा नहीं कर सका। आन्दोलन के इस नतीजे से आम जनों में जो हताशा दिखी वह शोचनिय थी। गांधी ने भी अपनी राजनीति को बदल दिया और अब वे अपना पुरा समय रचनात्मक कार्यों और अछूतोद्धार में लगाने का निर्णय किया। इस निराशा की स्थिति में काउन्सिल प्रवेशवादी तबके द्वारा पुनः स्वराज पार्टी को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया जाने लगा।

1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ। इस पार्टी का गठन युवा वामपंथी राष्ट्रवादी तत्वों के एक ग्रुप ने किया था जो मार्क्सवादी विचारधार के प्रभाव में आंशिक रूप से आ गया था। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की खास विशेषता यह थी कि उसके सदस्य वही लोग हो सकते थे जो कांग्रेस के सदस्य थे। इस प्रकार यह पार्टी कांग्रेस का एक अंग बन गई जिसमें आम जनता को सदस्य बनने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता था। इसी वैचारिकता के कारण समाजवादी पार्टी की जो स्थिति आगे के दिनों में हुई उस पर एक सटीक टिप्पणी में कहा गया है कि भारत में समाजवादी पार्टी का इतिहास मिलन और विखराव का इतिहास है। कांग्रेस के समाजवादी विचारों से फर्क करने का प्रश्न समाजवादी पार्टी को हमेशा विभाजित करता आया है।

समाजवादी पार्टी का गठनः

17 मई, 1934 को समाजवादी पार्टी के गठन के लिए कांग्रेस के अन्दर ही काम कर रहे समाजवादी विचारों से प्रभावित नताओं का पहला अधिवेशन पटना के अन्जुमन इस्लामिया हॉल में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में हुआ। इस सम्मेलन में सम्पूनानन्द ने कहा कि समाजवाद की तरफ लोगों की रूचि तेजी से बढती जा रही है और लोग यह महसूस करते हैं कि कांग्रेस की रणनीति जिस मरणासन्न हालातों में जा पहुंची है उससे निकलने के लिए समाजवादी विचार एक बड़ा प्रभावकारी कदम हो सकता है। मगर समाजवादी पार्टी को बनाने वाले पहले ही इस तरह के दमन की कल्पना मात्र से भयभीत थे। मात्र नरेन्द्रदेव ही ऐसे नेता थे जिन्होंने लोहिया के इस सुझाव का समर्थन किया। बाकी सारे नेताओं की स्थिति काफी ढुलमुल थी वे कभी इस तरफ तो दूसरे क्षण उस तरफ डोलते नजर आ रहे थे। असहमति के इस माहौल में कोई निर्णय नहीं हो सका और मामला अगली बैठक के लिए स्थगित कर दिया गया।

संविधान को स्वीकृत किया जानाः

21–22 अक्टूबर, 1934 को अखिल भारतीय समजावादी सम्मेलन का पहला खुला अधिवेशन बम्बे के रेडीमनी टेर्रास में सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में किया गया। एक संविधान को स्वीकृत किए जाने के बाद कांग्रेस–समाजवादी पार्टी बजाप्ता एक राजनीतिक संगठन का रूप ले लिया। पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के गठन के साथ पार्टी ने कलकत्ता से एक अखबार (साप्ताहिक) कांग्रेस–सोशलिस्ट प्रकाशित करने का फैसला किया और इसके सम्पादन का भार लोहिया को सौपा। पार्टी की मान्य नीति में पूर्ण स्वराज की प्राप्ति, जिसके अन्दर यह भाव निहित था कि स्वतंत्र भारत पूर्णतः अपना संबंध इंग्लैण्ड से तोड़ लेगा और समाजवाद की स्थापना का लक्ष्य भी इसमें सन्निहित समझ गया। बम्बे में जो नीति–प्रस्ताव लिया गया वह दिखाया कि पार्टी पर मार्क्सवाद का प्रभव गहरा था, लेकिन विडम्बना थी कि इसकी सदस्यता कांग्रेस की सदस्यता से सम्बद्ध कर दी गई यानि इस पार्टी का सदस्य वही हो सकता था जो पहले से ही कांग्रेस पार्टी का सदस्य हो। इस प्रकार पार्टी अपने को आवाम की पार्टी बनने के रास्ते को अवरूद्ध तो कर ही दिया, इसके साथ इसकी दोहरी सदस्यता का प्रभाव इसे कांग्रेस के कार्यक्रमों से, जिसके विरोध में पार्टी का गठन हुआ था, उससे अलग नहीं होने दिया। यह समाजवादी पार्टी के दोहरे चरित्र का प्रमाण बन गया।

नीतिगह उहापोहः

पार्टी की सदस्यता का कांग्रेस की सदस्यता तक ही सीमित रखे जाने की स्वीकृति के पीछे समाजवादियों की एक वैचारिकता थी जो उन्हें इससे बांध रही थी। वह वैचारिकता लोहिया के विचारों में प्रकट होकर आई। भारत में कांग्रेस–सोशलिस्ट पार्टी के अभिर्भाव को यूरोप के समाजवादियों के चिन्तन से कि सामाजवादी वैचारिकता का उदभव पूंजीवाद के विकास के साथ पंजीपति वर्ग द्वारा अधिकरों का निर्ममता के लिए प्रयोग किए जाने के कारण नहीं हुआ था। लोहिया ने कहा है कि भारत में समाजवाद की सबसे बड़ी विशेषता या यों कहें कि इसकी सबसे बड़ी गड़बड़ी यह थी कि यह वामपंथी राष्ट्रवाद के रूप में आया। इसके शुरूआती चरणों में इसका लक्ष्य सुधार कार्यक्रमों के द्वारा असमानता मिटाना नहीं था, बल्कि भारत से ब्रिटिश राज को खत्म करना था। इसके कर्णधारों ने रूस और यूरोप से इस विचार को हासिल किया तथा लोगों को प्रभावित करने के लिए उन्हीं के तरीकों का इस्तेमाल किया। लोहिया का यह बयान कम्युनिस्ट विरोध की एक वैचारिकता से ग्रसित है जो मार्क्सवाद के सिद्धांतों को एक सर्वव्यापक विश्व दृष्टिकोण के रूप में नहीं देखता और उसको यूरोपीय विचार और भारतीय विचार के संदर्भ में विश्लेषित करता है। वह यह भी नहीं स्वीकारता की गरीबी और असमानता पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली के अनिवार्य शर्तें हैं और इसे समाप्त करने के लिए मिहनतकश आवाम को राजसता तक जाना जरूरी है। लोहिया के ये विचार घुम–फिर कर पूंजीवादी व्यवस्था के साथ समझौता और उसी में गरीबों को कुछ राहत प्रदान करा दिए जाने की नीति को आगे बढ़ाता है, बुनियादी बदलाव की अवधारणा से दूर है।

एक लेख 'इण्डियन फ्रीडम फ्रंट' में लोहिया ने लिखा कि लगातार इस बात पर जोर देते हुए कि बहुमत प्राप्त पार्टी को सरकार बनाने से इन्कार कर देना चाहिए, कांग्रेस–सोशलिस्ट पार्टी साम्राज्यवाद के खिलाफ विरोध का एक अनवरत मुहिम को चलाती जा रही है। इसके साथ ही किसानों, मजदूरों और शहरी गरीब तथा उनके संगठनों की मांगों के समर्थन में अनवरत मुहिम चलाते हुए पार्टी ने रोज–व–रोज की समस्याओं के खिलाफ संघर्ष की एक रणनीति को सामने लाई है जो साम्राज्यवाद के खिलाफ अन्तिम हमले में परिणत हो जाएगा।

कांग्रेस मंत्रीमंडल के गठन के बाद की स्थितिः

चुनावों में राष्ट्रीय कांग्रेस की विजय तथा प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमंडल बनने के साथ–साथ ट्रेड यूनियन गतिविधियों की एक नई लहर उमड़ी जिसका नतीजा यह हुआ कि 1937–38 में हड़तालों का जबरदस्त सिलसिला शुरू हुआ। हथियारों की होड़ से पूंजीवाद को अस्थाई तौर पर पुनर्जीवन मिल गया था और इसके फलस्वरूप समूचे विश्व में हड़ताओं की जो लहर आई थी, भारत की हड़तालें भी उसका एक अंग थीं।

हड़तालों का जो सिलसिला चला था उनमें सबसे जबरदस्त हड़ताल बंगाल की जूट हड़ताल थी जो सरकारी दमन के बावजूद समूचे जूट उद्योग में फैल गई। इसने आम हड़ताल का रूप ले लिया जिसमें कुल मिलाकर 255,000 मजदूरों ने हिस्सा लिया। मजदूरों के बीच 1929 की उस आर्थिक मंदी के दिनों से ही असंतोष इकट्ठा हो रहा था जब 130,000 मजदूरों को काम से निकाल दिया गया था, वेतन में कटौती की गई थी और अभिनवीकरण (रेशनलाइजेशन) के नाम पर काम के घंटे बेहद बढ़ा दिए थे और मजूदरों का जमकर शोषण किया जाने लगा था। 1931 से 1936 के बीच हालांकि जूट के मिलों में करघों की संख्या केवल 13 प्रतिशत बढ़ी पर जूट के उत्पादन में 65 प्रतिशत की वृद्धि हुई। बंगाल के प्रसिद्ध जूट उद्योगपति सर अलेक्जेंडर मरे ने कहा कि 'जब समूची दुनिया में मंदी आई थी तब भी वे मुनाफा कमाने में सफल हुए।' 1936 से जूट उद्योग पुनर्जीवन प्राप्त करने के युग में प्रवेश कर रहा था और फरवरी में जूट मजदूरों ने अपनी वेतन कटौती रद् करने तथा पर्याप्त मजदूरी पाने के लिए हड़ताल शुरू कर दी। यह हड़ताल मई तक चली। हालांकि फजलुल हक के प्रतिक्रियावादी मंत्रिमंडल ने इसको कुचलने के लिए तरह–तरह के उपाय किए और इसके लिए यह दलील दी कि हड़ताल का कोई आर्थिक आधार नहीं है और भारत में क्रांति का मार्ग प्रशस्त करने की हमदर्दी पाने में सफल हो गए। कांग्रेस कमेटी ने जनता ने जनता से अपील की वे जूट मजदूरों की हड़ताल के लिए तैयार कोष में धन दें। अंततः मजदूरों की यूनियन को मान्यता मिल गई और मालिकों को वेतन कटौती रद करने का सिद्धांत स्वीकार करना पड़ा।

हड़ताल की यह जो लहर आई थी उसकी खास बात यह थी कि इस बार वर्ग शांति के गांधीवादी सिद्धांतों पर काम करने वाली यूनियनों के गढ़ अहमदाबाद तक हड़ताल की लपट पहुंच गई। यहां बंबई प्रांत की कांग्रेस सरकार ने दंढ संहिता की घृणित धारा 144 लागू कर दी जिसके

अंतर्गत पांच या इससे अधिक व्यक्तियों के एक स्थान पर इकट्ठा होने पर पाबंदी थी। यह वह धारा थी जिसका कांग्रेस सदा से विरोध करती आई थी।

नवंबर 1938 में बंबई के 90,000 से ज्यादा मजदूरों ने यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस के पूर्ण समर्थन से खतरनाक इंडस्ट्रियल डिस्प्यूट बिल के विरोध में हड़ताल की। इस बिल के जरिए मजदूरों के विवादों को हल करने के लिए एक ऐसी व्यवस्था थोप दी गई थी जिससे हर मामले में चार महीने के लिए हड़ताल का अधिकार छिन जाता था, साथ ही मजदूर यूनियनों के पंजीकरण के ऐसे नियम बनाए गए थे, जिससे कंपनी की समर्थक यूनियनों को फायदा पहुंचता था। मजदूरवर्ग की चेतना और जागरूकता का यह जबरदस्त प्रदर्शन था। इस हड़ताल द्वारा बंबई प्रांत की कांग्रेस सरकार को चेतावनी दी गई थी ताकि वह मजदूर संगठनों के बारे में किए गए अपने चुनाव वायदों को पूरा करे।

ट्रेड यूनियन कांग्रेस के स्थापना दिवस से 30 अक्टूबर 1938 तक इसकी सदस्य की संख्या 325,000 हो गई। भारत के मजदूरवर्ग ने साम्राज्यवादी अपराधों के खिलाफ राष्ट्रीय मांगों के समर्थन में हर रोज संघर्ष छेड़कर अपने को साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों का एक संगठित और मजबूत हिस्सा बना लिया था।

इन घटनाओं के साथ–साथ और इनके कारण राष्ट्रीय आंदोलन के भीतर भी मजदूर आंदोलन की राजनीतिक भूमिका और उसके प्रभाव को महसूस किया जाने लगा। कम्युनिस्ट पार्टी पर लगे प्रतिबंध को हटाने के लिए कांग्रेस के प्रगतिशील तत्वों ने व्यापक अभियान शुरू किया जिसका अनेक ट्रेड यूनियनों ने समर्थन किया। कांग्रेस मंत्रिमंडलों के बन जाने से नागरिक स्वतंत्रता का क्षेत्र व्यापक हो जाने के कारण प्रतिबंधों के बावजूद कम्युनिस्ट पार्टी के लिए अंग्रेजी और मराठी में अपना मुखपत्र निकालना संभव हो सका। कम्युनिस्ट पार्टी ने अंग्रेजी में नेशनल फ्रंट नाम से और मराठी में क्रांति नाम से अपने मुखपत्र निकाले।

द्वितीय विश्वयुद्ध और समाजवादी पार्टीः

1 सितम्बर 1939 को द्वितीय विश्वयुद्ध के भड़कने के पूर्व से ही समाजवादी पार्टी एक सशक्त युद्ध विरोधी नीति के पक्ष में दीख रही थी। पार्टी एक गम्भीर और सशक्त युद्ध विरोधी आन्दोलन को चलाना चाहती थी और उसकी मान्यता थी कि यह एक ऐसा माकुल अवसर था जब ब्रिटेन को इस संकट की घड़ी में पडने पर उसके खिलाफ आन्दोलन को चला उसे भारत की जमीन से भगाया जा सकता था। 1938 में कांग्रेस–सोशलिस्ट पार्टी के अधिवेशन में लोहिया ने एक प्रस्ताव रख कर भारत की जनता का अह्वान किया था कि वह इसके लिए तैयार रहे कि वह घड़ी कभी भी आ सकती थी जब उसे ब्रिटेन को 'न एक पाई, न एक भाई' के नारे पर अमल करना पड़ जा सकता है। समाजवादी इस युद्ध के मौके को भारत की आजादी के लिए संघर्ष करने में इस्तेमाल करना चाहते थे। मगर नेतृत्व में रही कांग्रेस युद्ध के सम्बंध में अपनी नीतियों में विभाजित थीख इसके कुछ नेता, जवाहरलाल नेहरू समेत, फांसीवाद के खतरे को ब्रिटिश शासन से भी ज्यादा खतरनाक समझते थे और मित्र राष्ट्रों की मदद करने के इच्छुक दीखे। अपने को फांसीवाद और साम्राज्यवाद का प्रवल विरोधी बताने वाले लोहिया ने नेहरू की नीति का विरोध करते हुए यह चेतावनी दी कि अगर नहरू अपनी नीति में बदलाव नहीं लाते तब जनता–खासकर नवजवान तबका, सिर्फ गांधी की ही बातों को सुनने लगेगा, अभी वह नेहरू को भी समान महत्व देता है।

इस घटना के बाद जो परिस्थिति उत्पन्न हुई इससे प्रभावित परिणामों का आकलन करने और युद्ध के प्रति अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करने के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्यसमिति की जो बैठक 14 सितम्बर, 1939 को हुई उसमें कांग्रेस ने युद्ध के प्रति अपनी वैचारिकता को स्पष्ट किया और अपना बयान जारी किया जिसमें कहा गया था– यह समिति एक ऐसे युद्ध से न तो स्वयं को संबद्ध कर सकती है और न इस युद्ध के साथ सहयोग कर सकती है जो साम्राज्वादियों की नीति पर चल रहा हो और जिसका मकसद भारत तथा अन्य देशों में समाज्यवाद को मजबूत बनाना है।

कांग्रेस कार्यसमिति ने युद्ध के प्रति अपनी जिस वैचारिकता को अपने बयानों में प्रकाशित किया वह समाजवादियों की आन्दोलन छेड़ देने की एक तरफा विचार से भिन्न थी। कांग्रेस कार्यसमिति ने ब्रिटिश सरकार के इस हालत में समर्थन और विरोध दोनों आप्सन रखे थे इस शर्त

के साथ कि ब्रिटिन जिस नई व्यवस्था की बाते कर रहा था उस संबंध में भारत के प्रति उसके क्या विचार थे। कांग्रेस ब्रिटेन के साथ जिस मसले को उठा रही थी उस पर इंग्लैण्ड की प्रतिक्रियया नाकारात्मक दिखी।

बंबई के मिल मजदूरों के इस प्रस्ताव में भारतीय मजदूर वर्ग के संघर्ष को साम्राज्यवाद के खिलाफ अंतर्राष्ट्रीय मजदूरवर्ग द्वारा चलाए जा रहे संघर्ष का एक हिस्सा समझा गया।

सरकार के नाकारात्मक जबाव के कारण अक्टूबर, 1939 में कांग्रेस मंत्री मंडलों ने इस्तीफा दे दिया और 1940 में रामगढ़ अधिवेशन में कांग्रेस ने युद्ध के विषय में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया और कहा– भारत के संदर्भ में ब्रिटिश सरकार की ओर से की गई हाल की घोषणाओं से पता चलता है कि ग्रेटब्रिटेन मूलतः साम्राज्यवादी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ही यह लड़ाई लड़ रहा है– इस परिस्थितियों में यह स्पष्ट है कि कांग्रेस परोक्ष या अपरोक्ष किसी भी रूप में युद्ध में शरीक नहीं होगी।

1940 की गर्मियों में यूरोप में नजियों के बढ़ने के साथ और फ्रांस के पतन तथा युद्ध का संकट गहराने के साथ कांग्रेस ने ब्रिटेन के साथ सहयोग का प्रस्ताव किया, बशर्ते भारत को आजादी दे दी जाए और 'केन्द्र में एक अस्थाई राष्ट्रीय सरकार' की स्थापना की जाए जो भले ही अस्थाई तौर पर हो लेकिन केन्द्रीय विधानमंडल के सभी निर्वाचित सदस्यों का उसे विश्वास प्राप्त हो– यदि ये प्रस्ताव स्वीकार कर लिए गए तो देश की रक्षा के लिए कारगर संगठन बनाने के प्रयत्नों में कांग्रेस अपनी पूरी ताकत लगा देगी।' यह प्रस्ताव' जिसे स्पष्ट रूप से गांधी की अहिंसा की नीति से अलग होना ही था, जुलाई 1940 में पूना में दो तिहाई बहुमत से स्वीकार किया गया। मतदान का परिणाम यह देखा गया कि 91 लोग अहिंसा की नीति को छोड़ने के पक्ष में थे जबकि 63 लोग इसके विपक्ष में थे, और 95 लोग ब्रिटेन के साथ सशर्त सहयोग करने के तथा 47 लोग सहयोग न करने के पक्ष में थे।

1941 की स्थिति और समाजवादीः

1941 के उत्तरार्द्ध में सोवियत रूस पर जर्मनी के हमले, सोवियत रूस और इंग्लैड के बीच संधि सुदूर पूर्व में जापान का आक्रमण और ब्रिटेन, अमेरिका, रूस और चीन के नेतृत्व में ब्रिटिश सोवियत संधि का मित्र राष्ट्रों राष्ट्रों के मिले–जुले मोर्चे का रूप लेने के बाद जो स्थिति भारत में आई वह विवाद पूर्ण रही। इस बदलाव के नतीजे और भारत पर इसके प्रभाव के आकलन पर राष्ट्रवादी जनमत ने तुरंत अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

दिसम्बर, 1941 में जवाहरलाल नेहरू ने घोषण की 'दुनिया की प्रगतिशील ताकतें अब उस गुट के साथ पंक्तिबद्ध है जिसका प्रतिनिधित्व रूस, ब्रिटेन, अमरीका और चीन कर रहा है।' युद्ध के बदले हुए स्वरूप पर राष्ट्रीय आंदोलन के सभी हिस्सों ने तत्काल इतनी निश्चित प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की। अब भी कुछ हिस्से ऐसे थे जो गांधी की 'अहिंसक' शांतिवादी विचारधारा का अनुशरण कर रहे थे। अन्य लोग ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ किसी प्रकार के सहयोग के प्रति सशंकित थे। लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख जिम्मेदार नेताओं ने, जिनका प्रतिनिधित्व कांग्रेस अध्यक्ष, मौलाना आजाद तथा जवाहरलाल नेहरू, बहुमत के समर्थन से कर रहे थे, बराबरी के स्तर पर संयुक्त राष्ट्रों के मित्र राष्ट्र की हैसियत से सहयोग का आधार ढूंढने की कोशिश की। स्पष्टतः यह ब्रिटेन और मित्र राष्ट्रों के हित में था कि वे इन शक्तियों के साथ समझौते का कोई आधार तलाशने की कोशिश करते।

मगर इन प्रस्तावों पर ब्रिटिश सरकार की पहली प्रतिक्रिया हुए भारत, वर्मा तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य हिस्सों पर लागू न होने की बातें कही। उन्होंने कहा– अतलांतिक चार्टर के सिलसिले में हुई बैठक में हमारे दिमाग में मूलतः यूरोप के उन देशों को फिर से प्रभुसत्ता, स्वराज्य और राष्ट्रीय जीवन प्रदान करना था जो काफी धक्का लगा। मगर इसके बावजूद भी दिसम्बर, 1941 में सरकार द्वारा कांग्रेस के नेताओं की रिहाई के बाद सहयोग का नया रास्ता ढूंढने की दिशा में कुछ प्रगति दीखी। दिसम्बर, 1941 के आखिर में बारदौली के अधिवेशन में कांग्रेस ने घोषित किया कि भारत संयुक्त राष्ट्रों के मित्र राष्ट्रों की हैसियत से फासिस्ट धुरी राष्ट्रों के खिलाफ हथियार लेकर लड़ेगा वशर्ते उसे यह अवसर मिले की वह राष्ट्रीय सरकार के तहत जनता को गालबंद कर सके। प्रस्ताव में कहा गया थाः यद्यपि भारत के प्रति ब्रिटेन की नीति में कोई तब्दीली नहीं आई है

फिर भी समिति युद्ध के कारण घटित घटनाओं पर तथा भारत के प्रति इसके रुख पर विचार करती है। कांग्रेस की सहानुभूति निश्चित रूप से उन्हीं लोगों के साथ होगी जो आक्रमण के शिकार हैं और गुलाम बनाए गए हैं तथा अपनी आजादी के लिए लड़ रहे है, लेकिन एक स्वतंत्र ओर स्वाधीन भारत ही ऐसी स्थिति में हो सकता है कि यह राष्ट्रीय स्तर पर देश की रक्षा का दायित्व संभाल सके।

युद्ध के बाद की स्थिति और समाजवादीः

युद्ध के बाद 1946 में जब कैबिनेट मिशन ने अपना प्रस्ताव रखा और मसले का निदान ढूंढा जाने लगा तब कांग्रेस ने कैबिनेट मिशन के प्रस्तावों को अपूर्ण बताया मगर वार्ता को जारी रखने का फैसला किया। समाजवादी प्रस्ताव को सम्पूर्णता में अस्वीकार कर दिये जाने के पक्ष में थे और जब जून, 1946 में कांग्रेस ने प्रस्ताव के दीर्घकालिक सुझावों पर काम करने को सहमत हो गई तब समाजवादियों ने संविधान निर्माण सभा के गठन को सम्पूर्णता में अस्वीकार करते हुए आगे आन्दोलन चलाने की बाते की। उनकी राय में संविधान निर्माण सभा के गठन को सम्पूर्णता में अस्वीकार करते हुए आगे आन्दोलन चलाने की बाते की। उनकी राय में संविधान सभा का चरित्र सारभौम नहीं था इस कारण उन्हें यह स्वीकार्य नहीं था। मगर समाजवादियों की विडम्बना थी कि वे आगे आन्दोलन और खास कर क्रांतिकारी आन्दोलनों की दुहाई दिए मगर 1946 में जब रायल नेवी के सैनिकों ने विद्रोह किया तब समाजवादी भी उनके पक्ष में नहीं आए। कांग्रेस की नीतियों का विरोध समाजवादियों ने यह कहकर किया कि कांग्रेस आन्दोलन से हट गई है और ब्रिटिश राज के साथ समझौता की नीति पर चल पडी है। जिस क्रांतिकारी आन्दोलन की बाते वे करते थे उसकी न तो उन्होंने शुरुआत की और न अपने से उपड़े रायल नभी के सैनिकों के विद्रोह के पक्ष में खड़े हुए।

बम्बे में आहूत ए.आई.सी.सी. की बैठक में जयप्रकाश नारायण ने संविधान निर्मात्री सभा के गठन का और उसके विचार का कांग्रेस द्वारा स्वीकृति का विरोध किया और कहा कि जिस स्वराज्य के लिए भारत संघर्ष कर रहा है वैसा स्वराज्य इसके द्वारा नहीं लाया जा सकता। संविधान सभा के विचार से लाहिया भी असहमत थे। उनकी राय में यह ब्रिटिश सरकार का भारत को आजाद न किए जाने का एक नया फंदा था। समाजवादियों को संविधान सभा के लोभ में न आने के लिए चेतावनी देते हुए लोहिया ने कहा कि संविधान निर्मात्री सभा के संबंध में समाजवादियों की राय स्पष्ट है और समाजवादियों को इसमें नहीं जाना चाहिए। इस प्रकार समाजवादी संविधान सभा में नहीं गए।

26, 27 और 28 फरवरी को कानपुर में कांग्रेस–सोशलिस्ट पार्टी का सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में पार्टी के संगठन पर विचार किया गया और पार्टी के नाम के साथ 'कांग्रेस' शब्द को हटा दिया गया। लोहिया को पार्टी का अध्यक्ष चुना गया। अपने अध्यक्षीय भाषण में लोहिया ने कहा कि अंग्रेज भारत को छोड़ देंगे मगर वे इस महान देश को विखंडित करने संबंधी अपनी नीति को नहीं छोड़ेंगे।

शुरुआती दौर में लोहिया और समाजवादी देश बंटवारे के खिलाफ थे। समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष के रूप में लोहिया ने जून, 1947 में कांग्रेस कार्यकरिणी के बैठक में बंटवारे का विरोध किया और उदाहरण दिया कि किस प्रकार लिंकन गुह युद्ध की अवस्थाओं में भी अमेरिका के बंटवारे के खिलाफ खड़े रहे। मगर लोहिया द्वारा यह विरोध प्रभावकारी रू॰ में नहीं रखा गया जिसकी स्वीकृति लोहिया ने खुद की है। लोहिया ने खुद लिखा है कि मेरा विरोध किसी हाल में इस पहाड़ जैसी समस्या को हिला–डुला नहीं सका। आजादी के लिए संघर्ष करने वाले एक स्वस्थ्य योद्धा की तरह मेरा विरोध सिर्फ रिकार्ड में रह गया। एक.आई.सी.सी. की बैठक में इस सवाल पर जब मतदान हुआ तब समाजवादी मतदान में हिस्सा नहीं लिए। लोहिया ने स्वयं लिखा है कि समाजवादियों में इतनी हिम्मत ही नहीं थी कि वे नेताओं का विरोध कर सकें और वे मतदान में तटस्थ रह गए। इस प्रकार की तटस्थता का कारण सिर्फ नेताओं का विरोध करने का साहस नहीं होना था या मुस्लिम तुष्टिकरण, यह शोध का विषय हो सकता है। मगर यह बात निश्चित है कि समाजवादियों के इस रूख के कारण वे भी इस फैसले के लिए जाने के भागीदार बन जाए। भारत के बंटवारे के साथ भारत को आजादी मिली।

कांग्रेस से अलग होनाः

आजादी मिलने के बाद साम्राज्यवाद विरोध के आधार पर बनी राष्ट्रीय एकता का आधार सामाप्त हो गया और भारत की पुनर्सरचना के प्रश्न पर वैचारिक टकराव का दौर शुरू हुआ। आजादी मिलने के बाद भी समाजवादी कांग्रेस में रहना चाहते थे मगर सरकार में न शामिल होते हुए वे बाहर रहना चाहते थे और चाहते थे कि उन्हें सरकार की आलोचना का पूर्ण अधिकार रहे। समाजवादियों की यह नीति कांग्रेस के आला अधिकार रहे। समाजवादियों की यह नीति कांग्रेस के आला अधिकारियों को रास नहीं आई। जब जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस की अध्यक्षता प्रधानमंत्री बनने के लिए छोड़ा तब गांधी चाहते थे कि आचार्य नरेन्द्र देव कांग्रेस के अध्यक्ष बनें मगर कांग्रेस के अन्दर के दक्षिणपंथी वैचारिकता वाले नेताओं को यह स्वीकार्य नहीं था। लोहिया भी कांग्रेस के अन्दर रहने के इच्छुक दीख रहे थे, क्योंकि कानपुर में अपने एक वक्तव्य में उन्होंने कहा कि समाजवादी कांग्रेस में रहें या न रहे वे कांग्रेस को इस घड़ी में मदद करेंगे, आखिर यह उन्हीं की सरकार है। नेहरू सरकार की कमियां हमारी जनता की कमियां हैं। कौन जानता है की आने वाले कल में समाजवादी भी सरकार में जाय और वहां वे अनुपयोगी सिद्ध हो। कांग्रेस सरकार को मदद करने में समाजवादी जबतक संगठन में रहेंगे कभी भी पीछे नहीं रहेंगे।

फरवरी, 1948 में कांग्रेस ने अपने संविधान में संशोधन किया और उस प्रत्येक व्यक्ति को, जो किसी भी दूसरी पार्टी का, जिसका अपना संविधान और सदस्यता का प्रावधान था, चाहे वह पार्टी साम्प्रदायिक हो अथवा नहीं, कांग्रेस का सदस्य रहने से वंचित कर दिया। समाजवादियों के लिए यह एक बड़ा झटका था, क्योंकि अगर वे कांग्रेस में बने रहना चाहते तब उन्हें समाजवादी पार्टी को समाप्त करना पड़ता। 1948 के मार्च माह में नासिक की बैठक में समाजवादियों ने अपने सदस्यों से कांग्रेस से बाहर आ जाने की अपील की आचार्य नरेन्द्रदेव के आवास के आवास पर आयोजित एक प्रेस कांफ्रेंस में समाजवादी पार्टी ने अपना रूख स्पष्ट करते हुए स्पष्ट किया कि कांग्रेस न सिर्फ सम्राजवादी लक्ष्यों को छोड़ दिया है, बल्कि उसके अन्दर जनवरी विचारधरा भी मर रही है यही कारण है कि समाजवादी कांग्रेस से अलग हो रहे हैं। इस प्रसंग में लोहिया ने जो कुछ कहा वह समाजवादियों के हताशा को दिखा रहा था। लोहिया ने कहा कि यह कहना सही नहीं है कि समाजवादी विलग हो रहे हैं, क्योंकि वे कांग्रेस में कोई अतिथि की हैसियत से नहीं थे। कांग्रेस एक संगठन थी जिसके निर्माण में समाजवादियों का योगदान किसी से भी कम नहीं था। समाजवादी स्वच्छा से अपनी हिस्सेदारी का त्याग कर रहे हैं और अपने लिए एक पृथक घर का निर्माण करने जा रहे है।

1950 के जुलाई में जब मद्रास में समाजवादी पार्टी का आटवां सम्मेलन हुआ तब पार्टी के अन्दर वैचाकि मतभेद उमड़ते नजर आए। इस अवधिवेशन में समाजवादी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए रिपोर्ट को लोहिया ने सम्मेलन में भेजा तो जरूर मगर स्वयं सम्मिलन में उपस्थित नहीं हुए, क्योंकि कोरिया के युद्ध के बाद विदेश विभाग समिति की बैठक में कलेक्टीक सेम्यूरिटि और ऐशोसियेसन की विचारधार के उपर, जिसे यह प्रकाश और अशोक मेहता ने रखा था, यह नेतृत्व की वैचारिक एकता के अभाव का ऐसा प्रतीक था जिससे पार्टी टूटती है और यही लक्षण समाजवादियों में प्रकट हो रहा था। यह काल लोहिया के शब्दों में 'भारी' हंगामें का काल था, जिसमें समाजवादियों ने जन पार्टी की अवधारण के तहत यह अनवरत प्रयास किया कि किसानों, मजदूरों आदि को पार्टी की तरफ आकर्षित किया जाय। इसी काल में हिन्द मजदूर सभा, हिन्द किसान पंचायत आदि का गठन समाजवादियों ने किया, मजदुरों की हड़तालों का आयोजन किया और किसानों के प्रदर्शन आदि के कार्यक्रमों को चलाया। समाजवादियों के हौसले बुलंद थे और आने वाले चुनाव में पार्टी को उम्मीद थी कि वह बेहतर प्रदर्शन करेगी और अच्छा परिणाम हासिल करेगी। मगर लोहिया की टिप्पणी है कि इस काल में पार्टी कांग्रेस के खिलाफ अत्तेजनापूर्ण भाषणों के प्रश्न पर झगडती रही और वास्तविकता में सरकार के समर्थन में खड़ी दीखी।

प्रथम आम चुनाव में समाजवादी पार्टीः

1952 में भारत के नए संविधान के आधार पर आम चुनाव हुआ। समाजवादी पार्टी की विडम्बना यह थी कि जिस संविधान निर्मात्री सभा का उन्होंने बहिष्कार किया था, जिसे गैर–जनतांत्रिक बताते हुए उसमें हिस्सा नहीं लिया था, उसी संविधान के आधार पर हो रहे चुनाव

में उनकी भागीदारी यह दर्शा रही थी कि समाजवादियों की वैचारिकता कितनी ढुलमुल थी। संविधान सभा के बहिष्कार के बाद के वर्षों में समाजवादियों ने किसी वैकल्पिक सभा के लिए संघर्ष नहीं किया था, ऐसे संघर्ष का चरित्र क्रांतिकारी संघर्ष का हो सकता था मगर आन्दोलनों को शान्तिपूर्ण तरीके, जनवादी ढंग और सदरनाफरमानी की सीमा में समाजवादियों द्वारा बांध दिए जाने के कारण गैर–संवैधानिक आन्दोलनों की सम्भावनाओं से समाजवादी अपने को अलग कर लिए थे। हालांकि कम्युनिस्टों ने 1942 में उनके खिलाफ चलाए गए विभिन्न राजनीतिक दलों के हमलों से आहत रह कर भी तेलांगना, जैसे बड़े आन्दोलन को अंजाम दिया था और व्यापक जनगोलबंदी को देश के कुछ क्षेत्रों में अपने पक्ष में किया था। हालांकि अपने गैर–संवैधानिक, मगर क्रांतिकारी आन्दोलनों के बल पर मिहनतकश आवाम को अपनी तरफ आकर्षित भी किया था।

जून, 1952 में जब उत्तर प्रदेश समाजवादी पार्टी का सम्मेलन हरदोई में हुआ तब उसमें लोहिया ने समाजवादियों को अलचीली दार्शनिकता से अलग रहने की चेतावनी देते हुए कहा कि समाजवादियों को विभिन्न तरह के विरोधी तत्वों के साथ एकता कायम हो इसका प्रयास करना चाहिए जैसे आत्मा और पदार्थ, वर्तमान और भविष्य, धर्म और अधर्म, व्यक्ति और सामाजिक तथा रोटी और संस्कृति। यह अवधारण समाजवादियों में एक गैर–वैज्ञानिक सोच को लाने वाला विचार था जिसका और ज्यादा विश्लेषण और विकास हैदराबाद में आयोजित एक लेक्चर सिरीज में, 'न्यू कल्चर एसोसिएशन' के नाम से आयोजित था, किया गया। इसके बाद उन भाषणों का कुछ भाग एक किताब 'व्हील्स आफ हिस्ट्री' के नाम से जब प्रकाशित हुआ तब उसके बाद यह समाजवादी पार्टी में विवाद का कारण बन गया। इसके बाद समाजवादी पार्टी में विभाजन और एकीकरण तथा पुनः विभाजन का जो दौर चला वह आज तक चलता जा रहा है। आजादी के संघर्ष में समाजवादी चिन्तन का यही इतिहास रहा है।

स्वतंत्रता आन्दोलन और समाजवादी चिन्तन पर विचार

संदर्भः

1. सुभाषचन्द्र बोस, इंण्डियन स्ट्रग्ल, एशिया पब्लिशिंग हाउस।
2. रजनी पामदत, आज का भारत, दिल्ली, बम्मई, मद्रास, पटना मैकमिलन इण्डिया लि0,1985
3. लखनपाल, हिस्ट्री ऑफ कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, लाहौर 1946
4. 'जय प्रकाश नारायण, टुवार्डस स्ट्रग्ल, बम्बे, 1946
5. आचार्य नरेन्द्र देव, सोशलिज्म एण्ड नेशनल रिमाल्यूसन, बम्बे, 1946
6. ऑल इण्डिया कांग्रेस–सोशलिज्म पार्टी, कन्स्टीच्यूशन एण्ड प्रोग्राम, बम्बे, 1937
7. लोहिया, समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, हैदराबाद, 1936
8. 14 सितम्बर, 1939 को अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में पारित प्रस्ताव।
9. 9 सितम्बर, 1941 को दिया गया चर्चिल का भाषण।
10. हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, कलकत्ता, 31 अगस्त, 1946
11. लोहिया, गिल्टी मैंन ऑफ इण्डियाज पार्टीशन
12. दि इण्डियन नेशन, 9 दिसम्बर, 1947
13. रिपोर्ट ऑफ दि सिक्थ ऐनुअल कांफ्रेंस ऑफ दि सोशलिस्ट पार्टी, बम्बे, 1948
14. पायनियर, लखनउ, 2 अप्रैल, 1948
15. आचार्य नरेन्द्र देव, राष्ट्रीयता और समाजवाद, बनारस, 1950
16. रिपोर्ट ऑफ दि सेवेन्थ ऐनुअल कांफ्रेंस ऑफ दि सोशलिस्ट पार्टी, पूना, 1949
17. लोहिया, समाजवादी आन्दोलन का इतिहास